ISSN
(Print) 2320 – 6446, (Online) 2320 – 8341

सिनेमा क्या है?

डॉ. विजय शिंदे
देवगिरी महाविद्यालय, औरंगाबाद - 431005 (महाराष्ट्र).

जो सजीव नहीं परंतु सजीव होने का आभास पैदा करता है। एक ऐसी सपनिली दुनिया में लेकर जाता है कि दर्शक जब तक देख रहे हैं तब तक उसका लुफ्त उठाते रहते हैं। मन के सारे भाव पर्दे पर विविध रंगों के साथ प्रकट होते हैं जिसे देखकर वास्तविक दुनिया का यथार्थ दर्शन होता है। सिनेमा, फिल्म अथवा चलचित्र में एक के बाद एक कई चित्र इस तरह दर्शाए जाते हैं कि निर्जीव भी सजीव होने का आभास होता है। फिल्मों का निर्माण वीडियो कॅमरे से होता है परंतु उसके साथ जुड़कर ऐसे कई दूसरे आयाम और विशेष प्रभावकारी तकनीकों की वजह से उसे और अधिक मनोरंजक बनाया जाता है। परदे पर चलनेवाली तस्वीरें किसी न किसी कहानी को प्रकट करती है, जो कहानी हमारे जीवन और अनुभवों से जुड़कर साकार रूप लेती है।

सिनेमा का प्रचार और प्रसार उदय के बाद बड़ी तेजी के साथ हुआ है और पूरी दुनिया में विविध भाषाओं में फैली यह इंडस्ट्री लाखों लोगों की कला को नवाजती जा रही है, करोड़ों लोगों की जेबों में पैसा पहुंचा रही है। यहां प्रवेश बहुत कठीन है पर एक बार रास्ता बना दिया जाए और मेहनत लगन से काम किया जाए तो बिना शक्ल-सूरत के अच्छी कला और मेहनत के बल पर चोटी तक पहुंच सकते हैं। दुनिया की आबादी बहुत ज्यादा है, जिसमें फिल्मी दर्शकों की कमी नहीं। नई तकनीकों के चलते अच्छी फिल्में कई भाषाओं में देखने की सुविधा उपलब्ध है। अर्थात् सिनेमा वह जादू की छड़ी बना है जिसको घुमाते ही दर्शकों के चेहरे पर हंसी अंकित हो सकती है और आंखों से आसुओं की धारा भी निकल सकती है।

सिनेमा के दो पक्ष हमेशा से ताकतवर रहे हैं - एक है व्यावसायिक सिनेमा जिसमें केवल पैसा ही काम करता है। व्यावसायिक सिनेमा में जितना भी पैसा लगवाया जाता है उससे कई गुना लाभ कमाने की अपेक्षा होती है। इसमें विशिष्ट वर्ग, समूह को केंद्र में रखे सिनेमा की कहानी को बुना जाता है और उसके माध्यम से केवल दर्शकों के जेबों पर नजर होती है। दूसरा सिनेमा है कलात्मक, जिसमें पैसा लगाया जाता है परंतु लाभ का कोई भरौसा नहीं; परंतु आज इसमें नुकसान भी नहीं है, जितना लगाया जाता है उससे अधिक जरूर मिलता है। साथ ही पुरस्कार, सराहनाएं, सामाजिक परिवर्तन, समस्या अंकन और फिल्म निर्माताओं तथा उससे जुड़ी प्रत्येक सदस्य के कलात्मक रुचि की परख भी होती है। इस सफलता से उसके सामने कई व्यावसायिक सिनेमा के प्रस्ताव आने लगते हैं। मतलब पैसा कमाने की पहली सीढ़ी अपनी कलात्मकता को कसौटी पर उतारने के बाद ही प्राप्त होती है।

1. लोकप्रिय कला

बीसवीं शताब्दी की लोकप्रिय कला सिनेमा है। यह एक ऐसी कला है जिसमें बाकी की सारी कलाओं को समेटा जा सकता है। बाकी सारी कलाएं भी इसमें बिना रोकटोक समाने के लिए तत्पर है क्योंकि यह दर्शकों के लिए सहज उपलब्ध होनेवाला साधन है। अपने आपको सबके सामने प्रस्तुत करना है तो सिनेमा एक सर्वसम्मत साधन है। सिनेमा में प्रकाश विज्ञान, रसायन विज्ञान, विद्युत विज्ञान, कॅमरा तकनीक, फोटोग्राफी तथा दृष्टि विज्ञान के भीतर हुई नई खोजों के चलते अद्भुत परिवर्तन आ चुके हैं। जिलेटिन फिल्मों का प्रयोग, प्रोजेक्टर, लेंस ऑप्टिक्स तथा कंप्युटर के नए परिवर्तन और प्रोग्रॅमों के चलते सिनेमा के दर्शकों पर पड़नेवाला अंतिम प्रभाव लोकप्रिय कला बनाने में सक्षम बन पाया है। सिनेमा के कई विकल्प बाजार में आए परंतु इसकी स्पर्धा में वे टिक नहीं पाए। यह अभी भी लोगों पर अपना असर

ISSN
(Print) 2320 – 6446, (Online) 2320 – 8341

बनाए हुए है या युं कह सकते हैं कि पहले की अपेक्षा इसने अपनी पकड़ ज्यादा मजबूत की है। लोकप्रिय कला बनने का एक और कारण यह भी है कि सिनेमा दर्शकों की मांग के हिसाब से ढलता गया और अपने मूल स्वरूप को बनाए रखते हुए नए परिवर्तन और वैज्ञानिक गति के साथ आगे बढ़ता गया। फिल्मी सितारों के प्रति लोगों का आकर्षण चुंबक जैसा है। किसी का परिचय करवाते हुए केवल यह बताया जाए कि इस फिल्म का संगीत इसने दिया है, इस फिल्म के गीत इसने लिखे हैं या इस फिल्म में इसने यह काम किया है तो लोगों की उसके प्रति देखने की दृष्टि ही बदल जाती है। अर्थात् मायावी दुनिया के प्रति लोगों के आंखों में सम्मान, आकर्षण, प्रेम, कौतुहल है, अतः उसकी लोकप्रियता बरकरार है। सिनेमा ने टी. वी. वीडियो, सॅटेलाईट, डीवीडी, केबल जैसे अविष्कारों का निर्माण भी किया है। मोबाईल दुनिया के लिए एक नया अविष्कार रहा है परंतु मोबाईल के भीतर के ऍप्स भी सिनेमा के हिसाब से बनाए जाना उसके लोकप्रिय कला होने को दर्शाते हैं।

2. सार्वभौमिक अपील

सिनेमा का आकर्षण और अपील सावभौमिक है। दुनिया में कोई भी व्यक्ति नहीं मिलेगा कि जिसे सिनेमा पसंद नहीं हो। इसीलिए कई भाषाओं और कई इंडस्ट्रियों के बावजूद भी सिनेमा निर्माण लाभ का धंदा है। पूरे विश्व में यह सार्वभौमिकता बरकरार है। भारत का उदाहरण लिया जा सकता है। भारत कई भाषाओं का देश है, जिसमें हिंदी, अंग्रेजी के साथ कई प्रादेशिक भाषाओं में भी फिल्में बनती है और उनकी लाभकारी खपत होती है। पसंदिता फिल्में एक भाषा से दूसरी भाषा का सफर भी करती है या भाषा आए न आए मूल भाषा में भी देखी जाती है।

सिनेमा निर्माण के कई प्रमुख केंद्र हैं, विश्वमंच के तौर पर हॉलीहुड़ का नाम लिया जाता है और यहीं भारत में बॉलीहुड़ है। भारत में दक्षिण की फिल्मों के लिए टॉलीहुड़ पर्याय बन चुका है। इसके अलावा भारत के अन्य राज्यों में भी उनके प्रमुख शहरों में प्रादेशिक भाषा के अनुकूल केंद्र बन चुके हैं। संपूर्ण दुनिया की तुलना में भारतीय फिल्म इंडस्ट्री के भीतर सबसे ज्यादा फिल्में बनती है। सिनेमा आसानी से नई तकनीक आत्मसात करता है। मूक सिनेमा (मूवीज) से लेकर सवाक सिनेमा (टॉकीज), रंगीन सिनेमा, थ्री डी सिनेमा, फोर डी सिनेमा, स्टीरियो साऊंड, सिनेमास्कोप, वाइड स्क्रीन और आय मैक्स आदि परिवर्तन सिनेमा के सार्वभौमिकता में एक-एक सितारे को जोड़ते गए हैं। क्रिकेट के बीस ओव्हर के मैचों के लिए 'टी ट्वेंटी' कहा गया और तीन घंटों में खत्म होनेवाले एक मैच के लिए एक फिल्म देखने के एहसास से जोड़ा गया अर्थात् क्रिकेट के भीतर भी फिल्म का एहसास पाने की कोशिश हो रही है; इससे सिनेमा की सार्वभौमिकता और एहमीयत रेखांकित होती है।

3. परंपरागत कलाओं का एकत्रीकरण

सिनेमा ने परंपरागत कलाओं को अपनाया है और विश्व की परंपरागत कलाएं बेहिचक सिनेमा में जैसे है वैसे स्थान पा चुकी है। या ऐसा भी कहा जा सकता है सिनेमा एक मंच है और उसके माध्यम से सारी कलाओं का प्रदर्शन दुनियाभर में हो रहा है, परंतु वह प्रदर्शन सिनेमा के मापदंड़ और फॉर्म के हिसाब से हो रहा है। आरंभिक दौर में सिनेमा के लिए तकनीकी सीमाएं तो थी ही, दुनिया का एक हिस्सा दूसरे हिस्से से अपरिचित होना भी अड़चनें निर्माण करता था, परंतु आज सिनेमा और अन्य साधनों के माध्यम से दुनिया का एक छोर दूसरे छोर से बहुत नजदिक आ चुका है और अपरिचित चीजें भी परिचित हो चुकी है। दुनियाभर में घटित सारी घटनाएं और कलाएं हमारे नजदिक आ चुकी है। अपरिचित घटनाएं और कलाएं भी अपनी बनी है। इन कलाओं का इकठ्ठा फॉर्म सिनेमा उसका पर्याय बन चुका है। छिपी हुई, अपरिचित, उपेक्षित, नजरंदाज तथा दुनियां की नजरों से दूर की कलाओं को भरपूर सौंदर्य के बावजूद भी

ISSN
(Print) 2320 – 6446, (Online) 2320 – 8341

वह स्थान और महत्त्व नहीं मिलता जिसका हक उन्हें हैं। अर्थात् सिनेमा परंपरागत कलाओं को इकठ्ठा करने का माध्यम बन चुका है।

ऊपर कलाओं के एकत्रीकरण का एक पक्ष है और उसका दूसरा पक्ष यह भी है कि सिनेमा जिन कलाओं को अपनाता है उन्हें नुकसान किए बिना जैसे के वैसे बना रहने देता है। उसे मूल सौंदर्य के साथ दिखाने के लिए सिनेमा ने अपनी शैली में नए तत्त्वों को जोड़ना पसंद किया है। उदाहरणार्थ कहानी और उपन्यास की तरह मनुष्य की भौतिक क्रियाओं को उसके अंतर्मन के साथ जोड़ देता है। चित्रकला की तरह सारी चीजों का संयोजन करते हुए करिने से सजाता है, छाया तथा प्रकाश के क्रिया-प्रतिक्रियाओं को खूबसूरती के साथ सामने रखता है। साहित्य, चित्रकला, रंगमंच, संगीत, शिल्प को अपने सौंदर्यस्थलों के साथ सिनेमा ताकतवर बना है। अर्थात् इन कलाओं से पूंजी पाकर सिनेमा इनसे बहुत आगे निकल चुका है। सिनेमा में साहित्य (पटकथा और गीत), चित्रकला (ऍनिमेशन और कार्टून), रंगमंच (अभिनेता) और ध्वनिशास्त्र (संवाद और संगीत) आदि शामिल है। इन कलाओं का लाभ उठाने के लिए सिनेमा ने आधुनिक तकनीकों का सहारा भी लिया है।

4. विश्व सभ्यता का बहुमूल्य खजाना

जो हमें बहुत अधिक पसंद है उसे हम अपनी आंखों का तारा कहते हैं, उसे अपने दिल में सजाकर रखते हैं। सिनेमा के लिए हर एक के दिल, दिमाग और आंखों मे यहीं स्थान और प्यार देखा जा सकता है। सिनेमा का इतिहास बहुत लंबा और पूराना तो है नहीं लेकिन बहुत जल्दि वह दर्शकों के सर चढ़कर बोलने लगा और अपनी चरम विकास अवस्था तक पहुंच चुका है। सिनेमा सपनों की दुनिया को दिखाता है लेकिन ऐसा भी नहीं कि वह यथार्थ से हट जाता है। यथार्थ से जुड़कर सपने दिखाने का काम सिनेमा करता है। इससे विश्व की सारी सभ्यताएं और संस्कृतियां सिनेमा के माध्यम से सबके लिए सहज उपलब्ध हो रही है। मानव द्वारा कई नए अविष्कारों का निर्माण हो चुका है वह उसकी सभ्यता का अंश भी बन चुके हैं, उसमें सिनेमा बहुमूल्य खजाना और चमकता तारा है।

5. यथार्थ और यथार्थ से परे

प्लेटो ने कलाओं के यर्थाथवादिता पर प्रश्न चिह्न खड़ा किया और चिंतन की दुनिया में कला की वास्तविकता और यथार्थता पर बहसें होती रही। खैर जो भी हो इन बहसों से कलाओं के खूबसूरती, प्रसिद्धि, मांग, रुचि और तपस्या पर कोई असर पड़ा नहीं। मनुष्य यंत्र नहीं, उसके पास मन है, हृदय है, भाव हैं। इनके आधार पर वह कई कल्पनाएं करता हैं, वह साकार हो या नहीं हो फिर भी काल्पनिक दुनिया में विचरण करने लगता है। श्याम के समय सफेद-काले उमड़ते बादलों को देखकर उसकी आंखें उसमें कई चित्रकृतियां देखती है। गर्मी की चांदनी रातों में आंगन में पड़े-पड़े चमकिले तारों को देख उसके सपनों की दुनिया चित्रों में बदल जाती है। यह दुनिया झूठ होकर भी बड़ी प्यारी होती। यहीं मनुष्य मन की खूबसूरती फिल्मों का आधार बनी व्यक्तिगत कल्पनाएं साकार रूप में तब्दील होकर परदे पर उतरने लगी तो वह चकित हो गया। धीरे-धीरे फिल्म निर्माताओं ने यह भी पहचाना कि फिल्म फिल्म होती है परंतु उसे यथार्थ से दूर लेकर जाना उसकी आत्मा को मारना है। अतः यथार्थ से जुड़कर कुछ यथार्थ के परे जाकर फिल्म दर्शक की पसंद के हिसाब से बनाई जानेवाली तकनीक है। फिल्मी चिंतक और समीक्षक भी फिल्मों के यथार्थ और कल्पना में बहसें कर बेवजह समय की बर्बादी करते रहे हैं। यहां लड़ाई किस पलड़े का भारी होना नहीं है तो दोनों के उचित मिश्रण की है। सिनेमा कुछ यथार्थ और कुछ यथार्थ से परे है इसे स्वीकार कर बहसे खत्म करनी चाहिए।

ISSN
(Print) 2320 – 6446, (Online) 2320 – 8341

6. समय और समाज का प्रतिबिंब

सिनेमा के भीतर फिल्माएं दृश्य, घटनाएं और विवेचित कहानियां अपने समय और समाज का प्रतिबिंब होती है। सिनेमा के पटकथा का मूल धरातल साहित्य है और साहित्य की कोई कृति सिनेमाई रूप धारण कर परदे पर उतर रही है तो वह रचनाकार की ही बात करेगी। रचनाकार अपने समय की उपज होता है। कहीं न कहीं साहित्यकार को उसका समय आंदोलित करता है और उससे आहत होकर वह मन की बात कागज पर उतारते जाता है। जब कोई साहित्यिक कृति पटकथा का रूप धारण कर सिनेमाई फॉर्म में ढल जाती है तो मूल रचना के कुछ अंतरों के साथ अपने समय की ही बात करती है। ओम पुरी लिखते हैं, "सिनेमा को अपने समाज का, अपने समय का प्रतिबिंब होना चाहिए। जैसे आप अपने को आईने में देखते हैं, वैसे ही फिल्म के माध्यम से समाज को उसमें देख सकें।" *(हिंदी सिनेमा का सच, पृ. 63)* अर्थात् समय और समाज का प्रतिबिंब फिल्मों में उतरे तो वह दर्शकों की पसंद में उतरती है। फिल्में दर्शकों से पसंद न की जाए, देखी न जाए तो उसमें लगी लागत का भुगतान करना संभव नहीं होगा, अंततः फिल्म निर्माता कंगाल होता जाएगा। खैर दुनिया की आबादी इतनी बड़ी है कि आप उसकी रुचि और समय-समाज का तालमेल बिठाकर चलने की कोशिश करें तो सफल बन सकते हैं। समय से आगे जाकर बनती साय-फाय फिल्में भी हमें लगता है समय और समाज का प्रतिबिंब नहीं है। लेकिन यह फिल्में भी समय और समाज का ही प्रतिबिंब होती है, जो किसी लेखक, पटकथा लेखक, निर्माता के दिमाग में चल रहे समय और समाज के ही प्रतिबिंब को साकार करती है। वह भविष्य के नए अविष्कारों की ओर संकेत करती है। सिनेमा के भीतर दर्शाई गई काल्पनिक दुनिया नवीन अनुसंधान क्षेत्रों को खोल देती है। केवल भविष्य के ही नहीं तो भूतकाल की कल्पानाओं को भी साकार रूप में लेकर आने का साधन फिल्म है। सारी फिल्मी दुनिया में ऐसे ढेरों फिल्में हम देख सकते हैं, जिसमें साय-फाय तकनीक का उपयोग बड़ी चतुरता के साथ किया है।

7. सार्वजनिक कला

फिल्में एक समूह द्वारा समाज के लिए बनाई जाती है। फिल्मों पर किसी अकेले का अधिकार नहीं होता है, उसे बनाते वक्त कई लोगों का योगदान होता है, तभी जाकर एक अच्छी और सफल फिल्म बनती है। फिल्म बनाने में छोटी बड़ी भूमिका निभानेवाला प्रत्येक सदस्य कहता है कि यह मेरी फिल्म है, दर्शक और समाज का प्रत्येक व्यक्ति भी उस फिल्म में चित्रित घटना, प्रसंग और विषय से जुड़कर कहता है कि यह मेरी फिल्म है। अर्थात् इससे स्पष्ट होता है कि सिनेमा सार्वजनिक कला है और इसे कोई भी नहीं भूले। बनानेवाले भी इसे हमेशा याद रखते हैं तभी वह सार्वजनिक कला बनती है और सार्वजनिक स्वीकृति पाती है। सिनेमा के आरंभ से ही इसे सार्वजनिक कला के रूप में प्रस्तुत किया है। इसलिए उसने एक के बाद एक विकास की सीढ़ियां पार की है। विनोद भारद्वाज इस पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं कि "इस ढांचे में देखे, तो एक गंभीर फिल्मकार जो अपनी नियंत्रित कल्पनाशक्ति से इतने लंबे समय तक फिल्में बनाता रहा है वह इस बात को नहीं भूलना चाहता कि दर्शकों का मेरे साथ कोई सीधा और दायित्वपूर्ण संबंध है। मुझे अगर उनसे नियंत्रित नहीं होना है, तो मैं इस बात को भूल भी नहीं सकता कि फिल्म सबसे पहले और सबसे बाद में एक सार्वजनिक कला है।" *(सिनेमा - कल, आज, कल पृ. 45)* कुलमिलाकर निष्कर्ष यह निकलता है कि सिनेमा सार्वजनिक कला है और उसी रूप में बने रहने में उसकी सजीवता को बनाए रखता है।

8. चमत्कारिक कला

निर्जीव वस्तुओं के सहारे सजीव होने का एहसास पाने की जगह सिनेमा है, अतः उस बहाने सिनेमा चमत्कारिक कला है। लिमिएर बंधुओं (ऑगस्टी व लुईस लिमिएर) द्वारा बनाई पहली फिल्म जब

ISSN
(Print) 2320 – 6446, (Online) 2320 – 8341

परदे पर देखने के लिए दर्शक बैठें तो उसको चलते देख दर्शकों में चमत्कार, आश्चर्य, भय जैसे भाव निर्माण हुए उसका कारण 'अरायव्हल ऑफ द ट्रेन' (1895) में वे जो भी देख रहे थे उसकी उन्हें आदत नहीं थी। जिसकी हमें आदत नहीं होती हैं और हमारी कल्पना के परे की चीजें होती हैं उसे देख चमत्कार निर्माण होना स्वाभाविक है। यह चमत्कारिक कला की विशेषता आज भी सिनेमा में बरकरार है। दिनेश श्रीनेत सिनेमा के इस कला की विशेषता बताते लिखते हैं, "पेरिस ने सिनेमा की शुरुआत का श्रेय भले ही लिया हो, जर्मनी, इंगलैंड, इटली और अमेरिका में भी इस सिलसिले में प्रयोग चल रहे थे। दरअसल अविष्कार की प्रक्रिया के दौरान ही पश्चिम ने इसकी व्यावसायिक संभावनाओं को भांप लिया था। इसका नतीजा यह हुआ कि पहले दिन से ही इस जादुई लालटेन का इस्तेमाल लोगों को लुभानेवाली एक चमत्कारिक कला के रूप में होने लगा।" *(पश्चिम और सिनेमा, पृ. 7)* हमारी कल्पना के परे की चीजें, विषय, घटना प्रसंग परदे की आंख से एकदम देख लेते हैं। आज थ्री डी, फोर डी की फिल्में देखना उसी का अनुभव देती है। नई फिल्में को देखना हमारी सारी कल्पानाओं को धराशाही कर देता हैं और आधुनिक तकनीकों के सहायता से उन चमत्कारों में पहले से ज्यादा जीवंत होने का एहसास पाते हैं। जब तक फिल्म चलती है तब तक उन चमत्कारों का लुफ्त दर्शक उठाते हैं लेकिन उसमें अपने आस-पास को भूला देने की क्षमता भी है।

9. बीसवीं सदी की सर्वश्रेष्ठ कला

बीसवीं सदी के कई कला अविष्कारों में से एक अविष्कार फिल्म कला भी है। बाकी अविष्कार लोगों के साथ जुड़े परंतु उसका स्वरूप सामूहिक नहीं रहा, वे विशिष्टता के साथ एक ही से जुड़े रहे या जब जरूरत होती है तभी इन अविष्कारों की उपयोगिता साबित होती है। लेकिन सिनेमा एक ऐसा कला अविष्कार है जो व्यक्ति और व्यक्ति-समूह के साथ हमेशा चलता रहा है। बहुत नया कला अविष्कार और सबसे प्रिय कला अविष्कार होने के कारण मानो वह इंसान की जेब में ही उपलब्ध है। हमारे आस-पास अब इतने साधन है कि बीसवीं सदी की सर्वश्रेष्ठ कला सिनेमा को चलते-चलते पा सकते हैं। उसकी यह सहज उपलब्धता उसको सर्वश्रेष्ठ कला में स्थापित कर देती हैं, साथ ही इसमें बाकी सारी कलाएं बड़े आराम के साथ समा भी जाती है। सिनेमा को 'बीसवीं सदी की सर्वश्रेष्ठ कला' इसलिए कहा कि "एक तो यह सभी कलाओं - नृत्य, गीत, अभिनय, लेखन, नाटक का संगम है, अनेक तरह की तकनीक के परफेक्शन की मांग करता है और दूसरे, अपने दर्शक को व्यक्तिगत और सामूहिक, दोनों स्तरों पर आनंद की अनुभूति कराता है। वह हॉल में भीड़ के साथ बैठकर फिल्म देखता है, परंतु दर्शक के तौर पर अकेले रस लेता है।" *(फिल्म पत्रकारिता, पृ. 18)* सिनेमा की भीड़ में होकर भी अकेले में रस लेने की विशेषता अनूठी है। आज विज्ञान ने कई नए अविष्कार किए जो इस अकेले रस लेने की खूबी को पुष्ट कर रहे हैं। नई तकनीकें इस सर्वश्रेष्ठ कला को और अधिक ताकतवर रूप में हमारे सामने रख सकती है।

सारांश

सिनेमा वर्तमान युग में इंसान को प्रभावित करनेवाला अत्यंत सहज और सरल साधन है। इसका स्वरूप, रूप, अर्थ और आकार इंसान के सर चढ़कर बोलने लगा है। हालांकि प्लेटो बौद्धिकवादी इंसान थे और ऐंद्रिय सुखों और आनंद को नकारते थे परंतु उन्होंने भी यह बात दिल पर पत्थर रखे स्वीकारी होगी या हो सकता है कि उन्होंने एक सिद्धांत को समाज के सामने रखा और उसके साथ अंत तक बने रहे। वैसे विचारक और दार्शनिक अपनी बातों पर अड़े रहना भलिभांति जानते हैं चाहे वह सच हो न हो। बाद में अपने ही अनुयायी, शिष्य उसी काल में नई स्थापनाएं करे तो भी उसको स्वीकारते नहीं। मौन रहेंगे, नहीं तो अपनी ही बांसूरी बजाते रहेंगे। मन और बुद्धि की श्रेष्ठता और गौणता यहां विवाद का विषय नहीं है। जो बात मनुष्य के लिए उन परिस्थितियों में उपयोगी साबित हो वह श्रेष्ठ हैं, चाहे वह बौद्धिक पक्षवाला आनंद

ISSN
(Print) 2320 – 6446, (Online) 2320 – 8341

हो या ऐंद्रिय पक्षवाला आनंद हो। सिनेमा मनुष्य के सपनों को सजा रहा है, संवार रहा है और उसे अपने काल्पनिक दुनिया के सहारे यथार्थ को परिचित करवा रहा है, तो अत्यंत लाभकारी है। आज दुनिया के पास जो भी नव-नवीन खोजों की उपलब्धता है वह उसकी कल्पना का ही कमाल है। सिनेमा मनुष्य विकास में योगदान दे रहा है और उसको अपनी वास्तविकताओं से परिचित करवाते हुए आनंद भी प्रदान कर रहा है।

सिनेमा चलती हुई तस्वीरों का और सपनों का कारखाना है। वह लोकप्रिय कला, सार्वभौमिक अपील, परंपरागत कलाओं का एकत्रीकरण, विश्व सभ्यता का बहुमूल्य खजाना, यथार्थ और यथार्थ से परे लेकर जाने के लिए जादू की छड़ी, समय और समय के प्रतिबिंब को अंकीत करने का साधन, अपनी दुनिया का प्रदर्शन करने का तरीका, सबके लिए उपलब्ध सार्वजनिक कला, दुनिया को चौकानेवाली चमत्कारिक कला और बीसवीं सदी की सर्वश्रेष्ठ कला है। फिल्मों में कहानियां, गीत और संगीत जिस रूप में समाविष्ट हुए हैं उन्हें सिनेमा को सक्षम बना रहा है, साथ ही भविष्य में यह और नए रूप में आने के संकेत दे रहा है। नई तकनीकें और विज्ञान इसे और सक्षम, प्रभावकारी और जीवंत बनाने में जुटा है। जो कभी सजीव नहीं और हो नहीं सकता उसका सजीव होने का आभास निर्माण करना दर्शकों के लिए लुभाता है और हमेशा लुभाता रहेगा।

लिमिएर बंधु, दादासाहब फालके और अन्य फिल्म निर्माताओं ने अपनी पहली फिल्म के पहले भी फिल्में बनाने का प्रयास किया। वे सफल भी हुए परंतु सच्चे मायने में उन्हें फिल्म कहने के लिए जो फॉर्म होना चाहिए उसमें नहीं था, अतः उन्होंने भी उन्हें फिल्म मानने से इंकार किया और दर्शकों ने भी। चलते हुए चित्रों में जब पहली बार कहानी को पिरोया गया तब वह फिल्म मानी गई और निर्माताओं के मन को भी तसल्ली हो गई कि भई अभी सच्चे मायने में हमारे मन की फिल्म परदे पर साकार हो चुकी है। धीरे-धीरे जैसे समय आगे सरकता गया वैसे-वैसे सिनेमा के फॉर्म में नई कलाएं और तकनीकें जुड़ती गई तो सिनेमा अपना आकार ग्रहण करते गया। सिनेमा की विशेषता यह है कि उसमें पुराना बना रहा और दिनों-दिन नया जुड़ता गया।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. पश्चिम और सिनेमा - दिनेश श्रीनेत, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012.
2. फिल्म पत्रकारिता - विनोद तिवारी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007.
3. फिल्मक्षेत्रे-रंगक्षेत्रे - अमृतलाल नागर (सं.डॉ. शरद नागर), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2003.
4. सिनेमा : कल, आज, कल - विनोद भारद्वाज, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006.
5. हिंदी सिनेमा का सच - (सं.) मृत्युंजय, समकालीन सृजन, कलकत्ता, अंक 17, 1997.